व्याख्यान

उकसाने वाले पाठ*

अनिता रामपाल

यह लेख बताता है कि खुशनुमा ढंग से सीखना या गतिविधियों से सीखना जैसी अच्छी बातें भी जब ढर्रे में तब्दील हो जाती हैं तो उन्हें सवालों के घेरे में लाना जरूरी हो जाता है। रोजमर्रा के संदर्भों से कटे और बेजान किस्म के पाठों के पार एक जीती-जागती दुनिया है। एनसीईआरटी के पांचवीं तक के पाठ्यक्रम के हवाले से यह लेख दिखाता है कि यह दुनिया पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यक्रमों में कैसे दाखिल हो सकती है। इसके लिए बनी-बनाई हदों के पार जाने और असंतोष से सीखने की प्रक्रिया में दो-चार होना होगा। यह लेख डमरू इंटरनेशनल सेमीनार में दिए गए व्याख्यान पर आधारित है।

नमस्कार दोस्तो! सबसे पहले तो मैं अर्ज़ करना चाहती हूं कि अपने इस वक्तव्य के लिए मैंने जो शीर्षक सोचा था वो यह थाः 'उकसाने वाले, सीमाओं के पार जाने वाले पाठ और असंतोष से सीखना।' मैं इस सेमिनार के शीर्षक में ध्वनित (अ)संतोष शब्द के साथ खेलने की कोशिश कर रही थी, मगर फिलहाल मैं मुख्य रूप से पाठ्यपुस्तकों पर बात करूंगी और मैं यह मानकर चल रही हूं कि बच्चे कैसे सीखते, समझते हैं, इससे संबंधित बहुत सारे मुद्दों पर पहले ही बात हो चुकी है। मैं उन मुद्दों पर ज्यादा जोर नहीं दूंगी। इसकी बजाय मैं उन इलाकों पर ध्यान दूंगी जो, मेरे ख्याल में, बच्चों के पाठ और उसमें आने वाले चित्रों की परंपरागत समझ की सीमाओं के पार जाना हो या विषयों के बीच अथवा अलग-अलग पहचानों व संस्कृतियों की हमारी धारणाओं के बीच आवाजाही का सवाल हो।

जैसा कि आप में से कुछ लोग जानते होंगे, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ, 2005) में सीखने की एक नई समझ अपनाने की बात कही गई है। एनसीएफ में इस समझदारी पर जोर दिया गया है कि सीखने का मतलब है बच्चे खुद ज्ञान रचें। रचने की यह प्रक्रिया दरअसल एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें बहुत सारे लोग और खुद बच्चे भी दूसरे बच्चों या वयस्कों के दायरे में हस्तक्षेप करते हैं या बच्चे इस बात को देखने की कोशिश करते हैं कि अपनी सामाजिक निर्मितियों से वे क्या लेकर आ रहे हैं और जहां से भी आ रहे हैं, अपने साथ किस तरह का ज्ञान लेकर आ रहे हैं। और हां, आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र की भी बात की गई है। शिक्षाशास्त्रियों और शिक्षा से जुड़े चिंतकों के मुताबिक आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र का आशय ऐसे शिक्षाशास्त्र से है, जो विभिन्न शक्ति संबंधों पर बच्चों या सीखने वालों को वाकई सवाल खड़ा करने की छूट देता है। उन्हें ये सवाल पूछने की सलाहियत देता है कि किसी ज्ञान को हमेशा ऊंची हैसियत और किसी अन्य ज्ञान को हमेशा कमतर हैसियत क्यों मिलती रही है। यानी, असमानताओं पर सवाल खड़ा करना और इस तरह इस आशय के संवैधानिक सिद्धांतों को आगे बढ़ाना कि लोकतंत्र क्या है, शिक्षाशास्त्र क्या है, समानता क्या है। मेरे खयाल से शिक्षाशास्त्र का यही मतलब है। आपने रे और दूसरों को जरूर पढ़ा-सुना

लेखक परिचय

दिल्ली विश्वविद्यालय में केन्द्रीय शिक्षा संस्थान में प्रोफसर हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के अनुरूप एनसीईआरटी द्वारा विकसित प्राथमिक कक्षाओं की पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति की अध्यक्ष रही हैं।

* डमरू इंटरनेशनल सेमिनार में पढ़ा गया पर्चा।

होगा, जिन्होंने इस बारे में बताया है कि किस प्रकार शिक्षा इस कोशिश को अंजाम देती है, खासतौर से लगातार हाशिए पर रहने वाले उन लोगों के लिए जिनको उनकी पाठ्यपुस्तकों में कोई भी जगह या प्रतिनिधित्व नहीं मिलता या मिलता भी है तो एक समस्या के रूप में इसका संबंध कक्षा के भीतर और कक्षा के बाहर होने वाले समूचे आदान-प्रदान से होता है। इसका एक अर्थ यह भी है कि अकादमिक ज्ञान और व्यावसायिक ज्ञान की परिभाषाओं को तौला जाए, बदला जाए। और इसका आशय देसी ज्ञान और स्कूली ज्ञान के भेद को समझने से भी होता है।

तो ये सारे सवाल उठाते हुए मैं इस बारे में भी बात करूंगी कि हम बच्चों को कैसे देखते हैं और इसी आधार पर इस बारे में बात करूंगी कि असंतोष से कैसे सीखा जाए। पहले मैं राजष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) की कुछ प्राथमिक कक्षाओं के पाठ्यक्रमों के कुछ उदाहरण लूंगी और इन पाठ्यक्रमों को तैयार करते हुए हम जिस एक अहम संघर्ष से गुजरे उसके बारे में जिक्र करूंगी। यों तो उस दौरान हम हर कदम पर संघर्षों से ही जूझ रहे थे मगर उन्हीं में से एक प्रमुख संघर्ष था कि आप पाठ्यक्रमों को किस तरह प्रस्तुत करते हैं? कैसे मुमकिन हो कि लोग आपके लिखे पाठ को किसी ऐसी चीज की तरह न देखें जो आपने महज चित्रांकन के लिए किसी कलाकार को दी हो। और आप जानते होंगे कि एनसीईआरटी यह सामग्री ऐसे देती रही है जो या तो इस सामग्री का मतलब नहीं समझते या फिर हम उन चित्रकारों की तस्वीरों की दुनिया को नहीं समझते। अब तक इस तरह का जो समरूप बच्चा चला आ रहा था, उसके बारे में भी समस्याएं कम नहीं थीं - चित्रकार को सिर्फ दो आंखें और एक गोला बनाना होता था, उसे ज्यादा ब्यौरा भरने की जरूरत नहीं थी। मान लिया जाता था कि चित्रकार को इसमें सिर खपाने की जरूरत नहीं है कि बच्चा कहां का है। वो बच्चा भारत का है या अमेरिका का है, नागालैंड से है या दिल्ली से, कोई फर्क नहीं पड़ता था। सारे सांस्कृतिक संकेतक या निशानियां सिर्फ एक औसत में ढल कर रह जाती थीं। इस तथाकथित ग्राफिक स्टाइल में यही सबसे आसान था। यह कॉमिक शैली बच्चों के लिए होने वाले ज्यादातर चित्रांकन पर हावी हो चुकी है।

जब हमने यह स्थिति देखी और हमने उम्दा बाल साहित्य को देखा, जिसके बारे में आप भी सुनते-देखते रहे हैं तो हमें एक अलग रास्ता अपनाना पड़ा। हमने इस तरह के काम के लिए जिन कलाकारों से संपर्क किया, उनको केवल काम नहीं सौंपा गया बल्कि उनको हमने अपने साथ काम में जोड़ लिया। हमने सिर्फ उनको यह नहीं बताया कि हम ये चाहते हैं और अब तुम इसकी तस्वीर बना दो। हमने उनको पूरी प्रक्रिया में साथ रखा ताकि पूरा पन्ना एक देखने लायक और आकर्षक पाठ बन जाए। यानी, सीखने वाले को गुदगुदाना, उसके दिमाग को छेड़ना, कोंचना, उसमें हंसी-मजाक का पुट पैदा करना, उसको दिलचस्प बनाना, ये सब दृश्य सामग्री में आने लगा। यहां मैं एक अवधारणा का उदाहरण दूंगी, समय की अवधारणा का। आपको मालूम है कि अगर आप दुनिया में कहीं भी किसी पाठ्यक्रम को देखें और उसमें समय की अवधारणा पर गौर करें तो आपको पता चलेगा कि आमतौर पर यह काम गणित की किताबों के जिम्मे रहता है और यह काम केवल घड़ियों और कैलेंडरों की मार्फत हल होता है। इन किताबों को देखकर लगता है मानो समय की अवधारणा के पीछे कोई भी सांस्कृतिक पहलू न हो, यह सिर्फ वक्त के बीतने की बात हो, यह सिर्फ घड़ियों और कैलेंडरों का मसला हो, जब भी कोई बच्चा चाहे उसे समझ सकता हो! हमारी कोशिश थी कि समय को एक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए और इस बारे में कलाकार के साथ मिलकर काम किया जाए। कलाकार के साथ काम करने की कोशिश इस बात पर केंद्रित थी कि आप बच्चे का कुतुहल पैदा करने के बारे में और उसे समय का एक बोध देने के बारे में सोच रहे हैं क्योंकि आप जानते हैं कि खुद बच्चा और बच्ची समय के बारे में बहुत कुछ जानते हैं। ये मत सोचिए कि आप किसी बच्चे को सिखाने जा रहे हैं कि "एक दिन में 24 घंटे होते हैं, एक घंटे में 60 मिनट होते हैं।" बच्चे को समय की अवधारणा बखूबी मालूम है। सवाल यह है कि आप उसके साथ इस बारे में बात कैसे करेंगे?

ज्यादातर लोग अपने बच्चों को ऐसे सामाजिक यथार्थ से बचाकर रखना चाहते हैं जो बर्दाश्त के काबिल नहीं है। दूसरी तरफ लाखों बच्चे हैं जो इन चीजों को हर रोज अपनी जिंदगी में देखते हैं, भोगते हैं। लाखों बच्चे हैं जिनको स्कूल से निकाल दिया जाता है क्योंकि उनके दैनिक जीवन को कहीं जगह नहीं मिलती।

तो हमने जान-बूझकर एक कहानी बनाई जो काफी उल्टे-पुल्टे किस्म की थी। मेरा मतलब है कि हमने उसमें चीजों को उनकी सामान्य स्थिति से हटाकर उलट-पुलट दिया था ताकि बच्चे को मालूम हो कि कुछ खास शब्दों का कब इस्तेमाल किया जा रहा है। जैसे सूरज का डूबना, सुमना का जागना। उसमें लाल स्याही से भी कुछ शब्द लिखे गए थे, जो इंगित करते थे कि यह बात सही नहीं है और आप नीचे दिए गए शब्दों में से इसे सही कर सकते हैं या नहीं। तो यहां यह बताने का चुनाव बच्चे के पास था कि उसे समय के बारे में क्या कुछ मालूम है। और आप जानते हैं कि इससे कुछ-कुछ इस बात का भी पता चलता है कि आप गलत सोचते हैं। तो इस तरह, पटचित्र वाली शैली अपनाई गई, वही परंपरागत शैली, जिसमें समय एक चक्र के रूप में चलता है।

यहां आप थोड़ा-सा हास्य पैदा कर रहे थे, आप बच्चे की स्वेच्छा को दे रहे थे और आप यह भी बता रहे थे कि चिड़िया का नन्हा-सा बच्चा हफ्तों में पैदा होता है या कुछ दिनों में उड़ने लगता है या उनको उड़ान भरने में महीनों लग जाते हैं। तो साहब, जब सामने चिड़िया का घोंसला हो या जब कोई फल गिरा हो तो क्या वो महीनों में गिरता है या उसको गिरने में घंटों लगते हैं या सैकेंड लगते हैं, ये बच्चे भी समझते हैं। तो इस तरह जब आप चर्चा करते हैं कि समय क्या है तो आप श्रम को एक खास मूल्य भी दे सकते हैं। एक सुराही बनाने में कितना समय लगता है? एक स्वेटर बुनने में कितना समय लगता है? समय इन सारे संदर्भों से गुजर कर हम तक आता है। इसके बाद आप बच्चों से भी पूछते हैं और उनको थोड़ा उकसाते हैं कि वो हमें बताएं कि वे क्या जानते हैं। और हां, क्या उनको नहाने में घंटों लगते हैं या मिनट लगते हैं। यह तो बच्चों के लिए बारहमासी सवाल रहता ही है।

इस तरह बच्चे के साथ थोड़ी-सी खींचतान और हंसी-मजाक भरा लिखने का ढंग बच्चे को कुछ-कुछ वैसा ही लगेगा जैसा वो खुद कहना चाहता है। कौनसी गतिविधियां मिनटों में पूरी होती हैं, कौनसी घंटों या दिनों में पूरी होती हैं। इसके आधार पर आप एक सारिणी बना देते हैं, आप संकेत देते हैं। अब बच्चों को अपने आसपास नजर दौड़ानी है, लोगों से बात करना है और उस सारिणी को भरना है।

सैकेंडों का भी सवाल ऐसा ही है। कौनसी गतिविधि है, जो आप सैकेंडों में पूरी करने वाले हैं? महीनों को लेकर आप बच्चे के पैदा होने के बारे में बात कर सकते हैं। वैसे भी यह जरा ढका-छिपा सा विषय रहता है, इसलिए समय के बहाने से इस पर भी बात की जा सकती है। अगर ये सब कुछ पाठ्यक्रम में आ जाए तो बच्चे इन चीजों को पाठ्यक्रमों के विमर्श में सही बना देंगे। मुझे याद है कि जब हम नवसाक्षरों के लिए चीजें तैयार कर रहे थे। तब इसी तरह के एक सरलीकृत कार्टून पर काम किया था। उसमें एक छोटा-सा कार्टून है, जो कहता है कि 'इस गतिविधि में सिर्फ कुछ मिनट लगेंगे।' सामने एक शौचालय है, लंबी-सी कतार है, बाहर लोग खड़े हैं और अपना विरोध जता रहे हैं। यह जाना-पहचाना नजारा है। हमने इन सारी चीजों को लेकर समझाया कि समय क्या होता है।

इसका मकसद संदेश देना या उपदेश देना नहीं था बल्कि एक संदर्भ को जीवित करना था। फिर बच्चों को उस संदर्भ से रूबरू होने का मौका देना था। मैं जल्दी-जल्दी उस मुद्दे पर आना चाहती हूं, जहां से शुरुआती बहस और चर्चा चली थी। हमें किसी चीज की टाइम लाइन की जरूरत थी और उसके लिए हमने झारखंड की एक औरत को चुना। हम इस महिला के बारे में कुछ अंतरंग ब्यौरे चाहते थे। हमने महसूस किया कि इस औरत के बारे में साक्षरता परियोजना के तहत कुछ समय पहले एक फिल्म बनी थी। फिल्म में वो बताती है कि हम आमतौर पर समय के बारे में कैसे सोचते हैं। जब मैं छोटी थी तो ऐसा हुआ था...। आप किसी चीज को कैसे याद करते हैं? लोग कैसे किसी चीज को याद रखते हैं? जब मैं 15 साल की थी तो उसको मैं कैसे याद रखती हूं? उसको याद आया कि कैसे वो एक बार पेड़ से गिर गई थी, उसने ये किया था, वो किया था, और फिर उसने बताया कि उसके "बच्चे हुए और

इस तरह वक्त तेजी से गुजरता गया। फिर मैं खेती और घर के काम-धंधों में मसरूफ हो गई, मवेशियों को संभालने में भी। मगर जब मैं 35 साल की हुई तो मेरी दुनिया में भूचाल आ गया। समय मानो एकदम थम गया था। मेरा आदमी बीमार पड़ा और मर गया। उसके भाई हमारे खेतों पर कब्जा जमाने लगे। उन्होंने मुझे बहुत मारा-पीटा और मुझे डायन कहने लगे।"

अब सवाल यह है कि आपको यह सामग्री तीसरी कक्षा के बच्चों के लिए तैयार करनी है। ये तकरीबन नौ साल के बच्चे हैं और शायद लोगों को अजीब लगे कि आप इस उम्र के बच्चों से ऐसी चीजों पर बात कर रहे हैं! पर खैर, असल में तो फिल्म इससे भी ज्यादा सकते में डाल देने वाली थी। मेरे कहने का मतलब है कि उस औरत को उसी के खेतों पर कपड़े फाड़कर नंगा कर दिया गया जो कि उसके इलाके में अकसर होता है क्योंकि उसका पति गुजर चुका था। उसके ससुराल वालों, उसके जेठ-देवर ने उसकी जमीन पर कब्जा कर लिया था। उसको उन्हीं खेतों पर कपड़े फाड़ कर नंगा किया गया। जब आप फिल्म देखेंगे तो आप विचलित हो जाएंगे। उस वक्त उसने कानूनी मदद के लिए हाथ-पांव मारे। एक कार्यक्रम के कार्यकर्ताओं ने उसकी मदद की। तब वो इन सब चीजों से गुजरने के बाद साक्षरता कक्षाओं में आने लगी। वो तब आई जब उसको अहसास हुआ कि उसे इस सामाजिक सहायता की जरूरत है और इसी से उसे ताकत मिल सकती है।

जाहिर है कि ये सब कुछ नौ साल के बच्चों की किताब में देने की जरूरत नहीं थी। मगर यह कहना कि "लोग मुझे डायन कहने लगे थे", ये भी कोई मामूली तथ्य नहीं था। अब हमारे सामने सवाल यह था कि जब कोई ऐसी चीज सामने आती है जो वाकई सामाजिक यथार्थ से जुड़ी हुई है तो हम बहुत असहज महसूस करने लगते हैं। जरा सोचिए कि दिल्ली के इसी उम्र के या इससे थोड़ी ज्यादा उम्र के बच्चे, उनके मां-बाप हैरी पॉटर की किताब खरीदने के लिए घंटों लंबी कतार में लगे रहते हैं और उन किताबों में डायनों की बहुत सारी कहानियां भी होंगी मगर उनको पढ़ते हुए न तो बच्चों के और न मां-बाप के माथे पर कोई शिकन आएगी। उनको कुछ भी अजीब नहीं लगेगा। आप जानते हैं कि वो बड़ी आसानी से डायनों के बारे में और ऐसी किसी भी चीजों के बारे में पढ़ लेंगे। वे कार्टून नेटवर्क देखेंगे, तमाम तरह की हिंसा देखेंगे और सारा खून-खराबा देखेंगे। यानी वे बहुत सारी ऐसी चीजें देखेंगे मगर परेशान महसूस नहीं करेंगे। लेकिन जब आप वास्तविक जीवन से निकली किसी चीज की बात करते हैं तो हरेक की जबान पर सवालों के कांटे उग आते हैं।

तो हमारी चर्चा का पहला बिंदु यह था कि हमें इसी तरह आगे बढ़ना होगा। हमने यही तय पाया कि जब हम फंतासी या कल्पना में ये सारी चीजें दिखा सकते हैं तो हकीकत में होने वाली मारकाट और आक्रामकता और ऐसी तमाम चीजों को भी क्यों न दिखाएं। यही तो असली सवाल है। ज्यादातर लोग अपने बच्चों को ऐसे सामाजिक यथार्थ से बचाकर रखना चाहते हैं जो बर्दाश्त के काबिल नहीं है। दूसरी तरफ लाखों बच्चे हैं जो इन चीजों को हर रोज अपनी जिंदगी में देखते हैं, भोगते हैं। लाखों बच्चे हैं जिनको स्कूल से निकाल दिया जाता है क्योंकि उनके दैनिक जीवन को कहीं जगह नहीं मिलती।

हम अपने इरादे पर डटे रहे। हमने इन सारी चीजों को इस तरह शामिल किया कि बच्चे को वैसी दहशत न महसूस हो जैसी इस फिल्म में थी। यह फिल्म तो बड़ों के लिए बनाई गई थी। वैसे भी यह फिल्म इस औरत को सिर्फ एक स्वाभिमान देने की कोशिश कर रही थी, जिसने अधेड़ उम्र में आकर पढ़ना शुरू किया। एक ऐसी औरत जो कहती है, "40 साल की उम्र में मैंने पहली बार पुलिस थाना देखा। जब 45 साल

हम आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र के जरिए चीजों पर पर्दा डालने की कोशिश नहीं करेंगे क्योंकि अब तो यही चलन बन गया है। हम आमतौर पर कहते हैं अरे, सीखने का कितना खुशनुमा माहौल है और देखो बच्चे कैसे-कैसे प्रयोग कर रहे हैं, वगैरह। मगर अब ये खुशनुमा ढंग से सीखना भी एक ढर्रा बन गया है, इसको बहुत बेजान बना दिया गया है।

की थी तो मैंने लिखना और पढ़ना सीखा। दो साल बाद मेरी बड़ी लड़की की शादी हुई। अब मेरी उम्र 50 साल है। मैं अपने नाती-नातिनों के साथ खेलती हूं और खुश हूं। उनमें से दो अब स्कूल जाने लगे हैं।" ये ऐसी एक जीती-जागती औरत की जिंदगी है और हम चाहते थे कि बच्चे इस औरत की जिंदगी की टाइम लाइन बनाएं।

अगला सवाल यह था कि टाइम लाइन जैसी साधारण चीज के लिए क्या संदर्भ चुना जाए क्योंकि कहने को तो यह सिर्फ कुछ संख्याओं और तथ्यों का खेल भर है। हमने जान-बूझ कर तय किया कि हम ऐसी नंबर लाइन नहीं बनाएंगे। ये पहली नंबर लाइन थी जिसको बच्चे किसी और की जिंदगी के संदर्भ में बनाने वाले थे। और यही तय था। उन्हें टाइम लाइन पर निशान लगाने थे। आप जानते हैं कि आमतौर पर हम ऐसे लोगों की टाइम लाइन बनाते हैं जो हमें अच्छे लगते हैं। वह हमारे परिवार के भी हो सकते हैं या फिर हम खुद की टाइम लाइन बनाते हैं और अपने आसपास के लोगों से पूछते हैं कि हमारी जिंदगी में कब क्या हुआ था। इस तरह हमारे पास ये सारे मुद्दे थे और ये गणित का अध्याय नहीं था। अभी मैं गणित के एक और अध्याय का उदाहरण लूंगी और फिर पर्यावरण अध्ययन के बारे में कुछ चर्चा करूंगी। मैं इन उदाहरणों के जरिए से दिखाना चाहती हूं कि पाठ्यचर्या किस तरह समावेशी हो सकती है, इस बारे में हमें क्या कदम उठाने होंगे।

मैं दिखाना चाहती हूं कि हम आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र के जरिए चीजों पर पर्दा डालने की कोशिश नहीं करेंगे क्योंकि अब तो यही चलन बन गया है। हम आमतौर पर कहते हैं अरे, सीखने का कितना खुशनुमा माहौल है और देखो बच्चे कैसे-कैसे प्रयोग कर रहे हैं, वगैरह। मगर अब ये खुशनुमा ढंग से सीखना भी एक ढर्रा बन गया है, इसको बहुत बेजान बना दिया गया है। हम अकसर सोचते हैं कि बस कोई गतिविधि करना ही काफी है; भले ही वो बिल्कुल निरर्थक हो, भले ही बच्चे उसके जरिए कुछ न सीख रहे हों। बस गतिविधियां करवाने की मारामारी मची हुई है। आज हमारे यहां यही हालात हैं। इसलिए मुझे लगता है कि हमें इस बारे में नए सिरे से सोचना चाहिए। बेशक, गतिविधि का महत्त्व है मगर बच्चों को वो चीजें मत सिखाइए जो बाद में आनी हैं। मसलन, उन्हें नंबर लाइन सिखाकर उसके आधार पर टाइम लाइन की बात मत कीजिए। हर चीज को एक संदर्भ में करिए। इसकी वजह ये है कि बच्चे इसी तरह सीखते हैं। संख्याएं भी संदर्भ से ही आती हैं। संख्या एक बहुत अमूर्त अवधारणा है। एक बच्चे के लिए "दो" समझना अमूर्त बात है। वह कैसे समझेगा कि किसी चीज के "दो" होने का क्या मतलब है? आप दो कुर्सियों, दो लोगों, दो हाथों का मतलब भली-भांति जानते हैं। मगर बच्चों के लिए "दो" बहुत अमूर्त अवधारणा है। उनको यह तरह-तरह की भौतिक गतिविधियों के जरिए समझ में आती है। अगर हम ये समझ जाएं तो फिर हमें देखना होगा कि हम क्या इस्तेमाल कर रहे हैं। लेकिन जैसा कि मैंने कहा, मैं दूसरी चीजों को नहीं देख रही हूं। मैं उन चीजों को देख रही हूं जो सचमुच असंतोष से सीखने की इस विषयवस्तु के दायरे में आती हैं।

कबाड़ी वाली : ये ऐसी औरत है जो दुकान चलाती है। इस कहानी का नाम है किरण सुमित्रा की कबाड़ी की दुकान। सुमित्रा किरण की सास है। वह पटना में कबाड़ी की दुकान चलाती है। यहां भी लोगों की जीती-जागती जिंदगी का इस्तेमाल सीखने वाले के अनुभवों में फर्क पैदा कर देता है। यहां तक कि हम बड़ों के लिए भी यह एक अलग अनुभव बन जाता है। मगर बच्चों के लिए तो यह खासतौर से अहमियत रखता है क्योंकि जैसे फंतासी की एक भूमिका होती है, उसी तरह असली जिंदगी के संघर्षों, असली जिंदगी की उपलब्धियों से भी बच्चे को बहुत आत्मविश्वास मिलता है। यह औरत बताती है कि उसे स्कूल में गणित पढ़ने से नफरत थी। सामान्य-सी बात है कि ज्यादातर बच्चे गणित को पसंद नहीं करते। मगर आज वह कहती है कि उसके काम के लिए गणित बहुत मायने रखता है। जिस तरह हम पिछले सत्र में जिक्र कर रहे थे, सवाल यह है कि श्रम किस तरह हमारी सोच में दाखिल होता है - किसी काम को सिर्फ अंजाम देने के दोयम दर्जे के साधन के रूप में या सीखने की प्रक्रिया के एक बेहद चुनौती भरे, उत्तेजक और रचनात्मक हिस्से के रूप में।

हमारी ज्यादातर कोशिश यह रही है कि श्रम को अध्यायों में संदर्भ के रूप में जोड़ा जाए। हमारा गणित का एक अध्याय है, जिसमें केवल ईंटों और उनके बनाने के ढंग पर बात की गई है। हमने यह संदर्भ इसलिए चुना क्योंकि क्यूबॉइड्स के बारे में बात करना कोई आसान बात नहीं मानी जाती है। आप जानते हैं कि ईंट भी एक क्यूबॉइड होती है इसलिए उसके जरिए आप रेखागणित को समझ सकते हैं या जालियों को समझ सकते हैं या आप समरूपता या सिमेट्री के विन्यास सीख सकते हैं, आप सीख सकते हैं कि धरोहर और विरासत की पूरी सोच कितनी खूबसूरत होती है। इस अध्याय में हम 300 गज की एक मस्जिद के फर्श पर ईंटों से बने विन्यास की बात करते हैं। इसके बाद हम चर्चा करते हैं कि आपके स्कूल में इसी तरह के विन्यास कैसे बनाए गए होंगे। इस तरह, विरासत को समझना भी कोई अलग से कक्षा में सीखने, अलग से अध्याय से सीखने का सवाल नहीं है। कहने का मतलब है कि यह हमारी विषयवस्तु के चयन में आना चाहिए, उन संदर्भों के चयन में आना चाहिए जो हम सीखने के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। यह कक्षा चार में गणित का अध्याय है। और यह पूरा अध्याय कबाड़ की दुकान चलाने वाली किरण के बारे में है। और यह इस बारे में है कि वह अपनी जिंदगी में क्या करती है। वह जैसे अपने बारे में बताती है, उसमें बच्चों जैसा ढंग है। फिलहाल मैं इसके ब्यौरे में नहीं जाऊंगी।

ये सारी चीजें एनसीईआरटी की वेब साइट पर उपलब्ध हैं। आप कक्षा 1 से 12 तक किसी भी किताब के एक-एक अध्याय के किसी भी विषय की किताब को डाउनलोड कर सकते हैं। आप चाहें तो अलग-अलग अध्यायों को डाउनलोड करें या पूरी किताब उठा लें। यह भी प्रकाशन के आज के व्यावसायिक युग में एक बड़ा संघर्ष है कि किताबें मुफ्त जारी की जाएं या नहीं। बल्कि इन किताबों को मुफ्त जारी करने का एक दिलचस्प नतीजा ये हुआ कि पाकिस्तान के कुछ वैज्ञानिकों से मेरी बात हुई, जिन्होंने मुझे बताया कि उन्होंने हमारे प्राथमिक पाठशालाओं के गणित के अध्याय डाउनलोड किए थे और उनकी सीडी बनाकर वे स्कूल मास्टरों को बांट रहे हैं! अब मुझे लगता है कि चीजों को आसानी से उपलब्ध कराने से किस तरह का आदान-प्रदान हो सकता है, इस सवाल पर हमें ध्यान देना चाहिए और एनसीईआरटी ने इस बारे में जानबूझ कर यह फैसला किया था। तो यहां आप देख सकते हैं कि कर्ज क्या होता है, चीजें क्या होती हैं, किस तरह का कबाड़ इकट्ठा किया जाता है, वो किस कीमत पर बिकता है, लोग उसे कैसे इकट्ठा करते हैं। किरण वाले अध्याय में ये सब कुछ है।

अब मैं पर्यावरण अध्ययन की किताबों से एक उदाहरण लूंगी। जैसा कि आपने महसूस किया होगा, ये विषयों की, इस प्रसंग में गणित की, परंपरागत सीमाओं को तोड़ने की कोशिशें हैं। और जिस तरह हम रोजमर्रा की जिंदगी में गुणा-भाग करते हैं या ऐसी कोई भी चीज करते हैं जिसकी प्रोफेसर राव अभी-अभी चर्चा कर रहे थे तो उसमें बहुत कुछ एथनो-मैथमेटिक्स होता है।

ये सब ऐसे क्षेत्र हैं जिन पर काफी अध्ययन हो चुका है। सवाल यह है कि आप इसको औपचारिक पाठ्यचर्या में कैसे ला पाते हैं क्योंकि हमने पाया है कि औपचारिक पाठ्यचर्या से जुड़े लोग भी वे चीजें नहीं कर पाते जिनको वे मौखिक ढंग से बड़े आराम से कर देते हैं। वे ऐसा इसलिए नहीं कर पाते क्योंकि हम उन्हें गलत ढंग से पढ़ाते रहे हैं। तो आइए देखें कि यह गलत ढंग क्या है?

परंपरागत रूप से पर्यावरण अध्ययन को असल में विज्ञान, सामाजिक अध्ययन और पर्यावरण शिक्षा के मिश्रण के रूप में देखा जाता रहा है। मगर इस एकीकरण पर कभी संजीदगी से बात भी नहीं हुई इसलिए यह एक बेमन से की गई कोशिश दिखाई देती है। इस तरह की किताब में कुछ चीजें विज्ञान पर होती हैं और कुछ सामाजिक अध्ययन पर। लेकिन, ये विषयवस्तु कैसे विकसित होती हैं, आप पाठ्यक्रम को कैसे विकसित करते हैं, इस पर प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता है। मैं चाहूंगी कि एक बार आप पाठ्यक्रमों पर ध्यान दें। यह वेबसाइट पर मौजूद हैं और चाहे पानी हो, चाहे भोजन हो, उन सबको देखें।

जब आप भोजन की विषयवस्तु को देखें तो इस बात पर गौर करें कि भोजन भी एक सांस्कृतिक धारणा है। भोजन का मतलब सिर्फ कार्बोहाइड्रेड और प्रोटीन नहीं होता। जिसे मैं भोजन मानती हूं, उसे देखकर हो सकता है आपको उबकाई आ जाए। और जिसे आप भोजन मानते हैं, हो सकता है उसे देखकर मैं गश खाकर गिर पड़ूं। तो कहने का मतलब यह है कि भोजन क्या है, इसकी अवधारणा को समझा जाए और देखा जाए कि यह पाठ्यक्रम इसके साथ शुरू होता है या नहीं। क्या लाल चींटियां, चिड़ियों के घोंसले, ऐसी चीजें पाठ्यक्रम में हैं या नहीं। आप प्रश्नरहित, सोचरहित ढंग से भोजन को देखने के रवैये को इसी तरह चुनौती दे सकते हैं।

और हां, जब आप भोजन के बारे में बात करते हैं तो आप आगे बढ़कर यह बात भी कर सकते हैं कि भोजन कौन पकाता/पकाती है, परिवार में किस तरह के विभाजन काम करते हैं, कौन चीजें खरीदता/खरीदती है, कौन उन चीजों को उगाता/उगाती है और ऐसा क्यों है कि आज इन्हीं चीजों को उगाने वाले खुदकुशी कर रहे हैं। ये सारी बातें हैं कक्षा 5 की किताब में। फिर एक पेंच! भला आप भोजन और उसको उगाने वाले के बारे में तब तक कैसे बात कर सकते हैं, जब तक कि आप अपने दौर के ऐसे महासंकट के बारे में बात नहीं करेंगे, जिसके चलते लाखों किसानों ने आत्महत्या का रास्ता अपनाया है और अक्सर उन्होंने उसी कीटनाशक को खाकर खुदकुशी की है, जिसका वे अपनी फसलों को बचाने के लिए इस्तेमाल करते थे। ये ऐसे मुद्दे हैं, जिनको हम यूं ही हाशिए पर नहीं धकेल सकते। ये सारे ऐसे मुद्दे हैं, जिनको बहुत सोच-समझ कर पाठ्यक्रम और फिर अध्यायों में शामिल किया गया है।

तो यह अध्याय श्रम से संबंधित है। अकसर सुनने में आता है कि फलां व्यक्ति फलां काम करते हैं, माली पौधों की देखभाल करते हैं और डाकिये फलां काम करते हैं और ये सब कुछ ठीक है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर एक अध्याय को हमने नाम दिया था 'किसके जंगल?' यह एक ऐसी औरत की कहानी है, जो बच्चों को जंगलों के बारे में सिखाने-समझाने के लिए उन्हें जंगल में लेकर जाती है। वो कहती है कि जंगलों को पढ़ना उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना किताबों को पढ़ना। ये बड़ा अद्भुत बयान है!

और क्या कभी आपने उन लोगों के बारे में सोचा है जो ये काम करते हैं? क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि वे कैसा महसूस करते होंगे। आपको ऐसा क्यों लगता है कि उन लोगों को इसी तरह का काम करने की जरूरत पड़ी? हमने इस बारे में भी कुछ सामग्री तैयार की है कि सफाई करने वाले कामगारों से लोग कैसे बात करते हैं। मैं फिलहाल इसके ब्यौरों में नहीं जाऊंगी। यह के. स्टालिन की बनाई "अनटचेबल इंडिया" नाम की एक फिल्म का हिस्सा था। तो हम यह भी कहते हैं कि, आपकी राय में वे लोग कब से यह काम कर रहे हैं और फिर हम अध्यापकों को बताते हैं कि बच्चे सफाई कामगारों से बात करें, इससे पहले आप इन सवालों पर बात करें, उन्हें संवेदनशील बनाएं। उन्हें बताएं कि कैसे हम इन मुलाकातों में लोगों के साथ सम्मानपूर्वक बात कर सकते हैं। इस संबंध में जो ड्रॉइंग दी गई है उसमें तरह-तरह के कामों का एक कोलाज भी है। आप इसमें से कोई भी पांच ऐसे काम चुन सकते हैं जिन पर आप काम कर सकते हैं। यहां एक बार फिर आप बच्चे को चुनौती दे रहे हैं। पहले आप बच्चे को चुनौती देते हैं फिर आप पूछते हैं कि अगर तुम्हें पांच काम करने वालों से बात करनी है तो तुम कौनसे पांच काम चुनोगे? और वही काम क्यों चुनोगे?

यह 'क्यों' का सवाल मायने रखता है। और 'क्यों नहीं', यह सवाल भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। इस तरह, आप इन सवालों को आगे ले आते हैं और उन पर बात करते हैं। फिर एक और दिलचस्प चीज होती है। कल्पना कीजिए कि अगर कोई भी इस काम को न करता तो क्या होता? अगर कोई हमारे स्कूल या घर के बाहर पड़े कचरे को न उठाता तो क्या होता? अब आप किसी ऐसे तरीके, ऐसी मशीनों या दूसरी चीजों के बारे में सोचिए जिनके जरिए लोगों को उन कामों से छुटकारा मिल जाए, जो वो नहीं करना चाहते। आपने जो कुछ सोचा, उसकी तस्वीर बनाई है और ये सारी तस्वीरें बच्चों ने अपनी सोच के आधार पर बनाई हैं। उन्होंने तस्वीरों में दिखाया है कि फलां काम के बारे में क्या किया जा सकता है, पम्प को साफ करने, कचरा उठाने के बारे में क्या किया जा सकता है। और अगर हमें इस

तरह यह काम करने दिया जाता तो शायद हमें यह काम करके बुरा नहीं लगता वगैरह। और फिर आप नारायण देसाई के उस संस्मरण का जिक्र ले आ सकते हैं जिसमें वो बताते हैं कि गांधी जी इस बात पर जोर दिया करते थे कि लोग हालात को बदलने की किस-किस तरह कोशिश करते हैं। इसके बारे में हमने और भी किस्से, और भी मिसालें दी हैं।

एक और अध्याय है बीजों के बारे में। यह अध्याय बीज की कहानी सुनाता है। मानो बीज अपनी आपबीती कह रहा हो। इस कहानी में बीज बताता है कि वक्त के साथ कैसे खेती का ढर्रा बदला है और अब तो अखबारों में भी किसानों की आत्महत्याओं की खबरें आने लगी हैं। तो यहां भी उस महासंकट की बात अनायास आ जाती है। अब बीज किसान की कहानी सुनाता है। यह मत्स्य कथा है। जैसा कि आप देख सकते हैं, यह कई ढंग से शुरू होती है। हम कहते ही हैं कि कला अलग विषय नहीं होनी चाहिए इसलिए यह सब कुछ गणित की किताब में ही है। गणित के अध्याय में कला की बात हो रही है। तो आप मछली की बात करते हैं। गणित की किताब में हमने कुछ विषय केंद्रित अध्याय लिए हैं, जहां पूरा अध्याय एक खास विषयवस्तु को उठाता है। दूसरे अध्याय ऐसे हैं जिनमें कुछ अवधारणाओं पर बात की गई थी। लेकिन जो विषयवस्तु चुनी गई, उसमें पहले ही आ चुकी बहुत सारी अवधारणाओं का समावेश जरूर किया गया था। इस तरह, हर किताब कम से कम शुरू में कुछ विषयवस्तु आधारित अध्यायों के साथ शुरू होती है और फिर दूसरे सवाल आते हैं। अब ये हाइकू के साथ, बच्चों की चित्रकारी के साथ शुरू हो जाता है। यानी, बच्चे कैसे कलाकारों के साथ मिलकर चित्र बना रहे हैं। वे चित्रों में मछलियों की बनावट देखते हैं। इसमें बताया गया है कि मीन का मतलब है 'मछली' और 'मीनाक्षी' का मतलब है एक ऐसी लड़की जिसकी आंखें मछली जैसी हैं। क्या आपको कोई ऐसा चेहरा याद आ रहा है जिसकी आंखें ऐसी थीं, उसको याद करके मछली की आंखें बनाइए। आप तरह-तरह से मछली के बारे में बात कर रहे हैं। फिलहाल मैं इस ब्यौरे में नहीं जाऊंगी।

तो दोस्तो यहां पर मछली की पूंछ, मछलियों के झुंड, मछली के पानी पीकर फूल जाने और अपने बड़े आकार से दुश्मनों को डराने के तरीकों के बारे में बड़ी दिलचस्प बातें हैं। कुल मिलाकर कुछ तथ्य हैं, कुछ जानकारियां हैं, जिनको और रोचक बनाया जा सकता है। लेकिन मैं जल्दी से इस तथ्य पर आना चाहती हूं कि हम मछुआरों और उनकी नौकाओं के बारे में भी बात कर रहे हैं। यहां फिर श्रम का सवाल आता है, इस बात का सवाल आता है कि लोग कैसे काम करते हैं और कैसे उनकी जिंदगी मछली से जुड़ी हुई है। तरह-तरह की नौकाएं, वे कितना समय लेती हैं, उनकी रफ्तार पर भी एक चर्चा है। हमने अभी तक रफ्तार पर कोई अध्याय नहीं किया था, यह पहला मौका है, जब नौकाओं के बहाने इस अध्याय में हम रफ्तार की बात करने लगते हैं।

और हम तरह-तरह की नौकाओं की, परंपरागत नौकाओं की बात करते हैं। लेकिन अब हमारे मछुवारे ज़रा परेशान हैं। ट्रॉलर नाम की बहुत बड़ी-बड़ी मशीनें समंदर में आ चुकी हैं, जो दूर-दूर तक मछलियां पकड़ती हैं, जिनके जाल बहुत विशाल हैं। वे अपने महाकाय जालों को समंदर में गहरे तक बिछा देती हैं और बेहिसाब मछलियां पकड़ लेती हैं। उन्हीं की वजह से समंदर के किनारों पर ज्यादा मछलियां नहीं बच पातीं। ये इतनी बड़ी नौकाएं हैं कि कई-कई दिन तक समंदर में रहती हैं। ये बड़ी मशीनें छोटी-छोटी मछलियों को भी नहीं छोड़तीं जबकि वे अभी बड़ी भी नहीं हुई हैं। छोटी नौकाओं के मछुवारे हमेशा नन्हीं मछलियों को अपने जाल से निकल जाने देते हैं ताकि

वहां हम बच्चों से पूछते हैं कि आप जंगलों के बारे में क्या सोचते हैं। हम उन्हें यह नहीं कहते कि देखो जंगल ऐसा होता है। सवालों के पूछने में भी भेद होते हैं। हम उनसे बनी-बनाई परिभाषाएं नहीं पूछते।... अब बताओ जंगलों के बारे में तुम क्या सोचते हो। इसी तरह मछलियों के बारे में है। हम उन्हें नहीं कहते कि प्राकृतिक संसाधनों का बचाव करो। ऐसा कोई उद्देश्य हमारे पास नहीं है। लेकिन हमारे पास ऐसे जीते-जागते लोगों के संघर्ष जरूर हैं, जो बताते हैं कि समंदर पर आश्रित रहने वाले मछुआरे इस तरह मछलियां नहीं पकड़ते।

असल में रोजमर्रा के संदर्भ पर बात करना अक्सर असहज लगता है लोगों को। यही वजह है कि अक्सर अभिजात्य स्कूल और अभिजात्य अध्यापक/अध्यापिकाएं कहते हैं कि ये किताबें तो देहाती बच्चों के लिए लिखी गई हैं। उनको समझ में नहीं आता कि ये किताबें सारे बच्चों के लिए कितने काम की हैं। उनको लगता है कि ये किताबें देहाती बच्चों के लिए हैं क्योंकि आप उनके जैसे संदर्भों का इस्तेमाल कर रहे हैं।

वे फल-फूल कर बड़ी हो जाएं और मछलियां खत्म न हो जाएं। उनके जाले की बनावट ही ऐसी होती है कि उसमें सिर्फ बड़ी-बड़ी मछलियां ही फंस पाती हैं। ये खास तरह की प्रौद्योगिकी है, एक खास तरह की तकनीक है जिसके सहारे आप समंदर को मछलियों से खाली नहीं होने देते। सैकड़ों सालों से मछुवारे यही करते आए हैं और वे सदा सिर्फ अपना पेट भरने और बेचने के लिए थोड़ी-बहुत मछलियां पकड़ते रहे हैं। अब वे कह रहे हैं कि अगर नए-नए ट्रॉलर रोज हजारों टन मछलियां पकड़ते रहेंगे तो जल्दी ही समंदर में कोई मछली नहीं बचेगी।

इसी अध्याय में फिर यह सवाल आता है कि जंगलों पर किसका हक हो। पहले हम जंगलों के बारे में औरतों की नजर से बात करते हैं। और वहां हम बच्चों से पूछते हैं कि आप जंगलों के बारे में क्या सोचते हैं। हम उन्हें यह नहीं कहते कि देखो जंगल ऐसा होता है। सवालों के पूछने में भी भेद होते हैं। हम उनसे बनी-बनाई परिभाषाएं नहीं पूछते। हम उनको कहते हैं कि तुमने ये देखा है, तुमने वो देखा है, तुमने सूर्यमणि नाम की लड़की के संघर्ष को देखा है, उसकी जिंदगी, उसके प्यार और उसके लगावों को देखा है और फिर आप बच्चों से पूछते हैं कि अब बताओ जंगलों के बारे में तुम क्या सोचते हो। इसी तरह मछलियों के बारे में है। हम उनके नहीं कहते कि प्राकृतिक संसाधनों का बचाव करो। ऐसा कोई उद्देश्य हमारे पास नहीं है। लेकिन हमारे पास ऐसे जीते-जागते लोगों के संघर्ष जरूर हैं, जो बताते हैं कि समंदर पर आश्रित रहने वाले मछुआरे इस तरह मछलियां नहीं पकड़ते।

इसी तरह सूर्यमणि भी बताती है कि जंगल एक सामूहिक बैंक की तरह है वह खुद यह कहती है। वह कहती है कि अगर हम इसमें से ज्यादा धन निकाल लेंगे तो हमीं को बाद में नुकसान होगा। इसका मतलब क्या है? प्राकृतिक संसाधनों की क्या भूमिका है और लोग खुद को उनके साथ कैसे जोड़कर देखते हैं? तरह-तरह की नौकाएं हैं। इसमें बड़ी संख्याओं, बहुत-बहुत बड़ी संख्याओं का भी सवाल आता है। भाषा भी जान-बूझ कर गुदगुदाने वाली, उत्तेजित करने वाली रखी गई है। भाषा ऐसी होनी चाहिए कि जिज्ञासाओं को दबाने की बजाय उनको और हवा दे, उसमें ऐसे बड़े-बड़े अल्फाज का इस्तेमाल न किया जाए जो आम तौर पर स्कूली पाठ्यपुस्तकों में भरे रहते हैं।

हम बच्चों से पूछना चाहते हैं कि आपने और क्या सुना/जाना है? क्या आपने लाख के बारे में सुना है? हमने ईंटों की चर्चा करते हुए लाख की संख्या पर बात की थी क्योंकि हमारे देश में तकरीबन एक लाख भट्टे हैं। हम ईंट भट्टों वाले अध्याय में इस संख्या पर यानी लाख के मतलब पर बात कर चुके हैं। क्या आपने किसी और संदर्भ में यह संख्या सुनी है। तब बच्चे बताते हैं कि हां उन्होंने लखपति शब्द सुना है। वे कहते हैं कि उन्होंने कोई कार्यक्रम देखा था। अब उनको कहा जाता है कि एक हजार लिखकर दिखाओ, फिर एक लाख लिखकर दिखाओ। इस तरह आप बच्चों को एक ऐसे ढंग से लेकर आगे बढ़ते हैं, जिसमें आप उनको उंगली पकड़ कर सिर्फ यह नहीं बताते कि देखो एक लाख यह होता है। वे खुद उसको खंगालते हैं। तो ये पाठ्यपुस्तकें इस ढंग से लिखी गई हैं।

हमारे देश में दो लाख नौकाएं हैं। उनमें से आधी नौकाएं बिना मोटर वाली हैं। अब बताओ कि मोटर वाली नौकाओं की संख्या कितनी है? सीधी-सी बात है। है ना? एक चौथाई नौकाओं की फलां खासियत है। अब हम सौ लाख के बारे में बात कर रहे हैं। हम यह देखकर चकित हो सकते हैं कि मछलियों से कितने लोगों की जिदंगी जुड़ी हुई है। कुल मिलाकर हमारे यहां तकरीबन सौ लाख मछुआरे हैं जो मछलियां पकड़ते हैं, उन्हें साफ करते हैं, उन्हें बेचते हैं, उनको सुखाते हैं, जाल तैयार करते हैं। इसके लिए हमारे पास एक और बड़ी संख्या है। सौ लाख को हम एक करोड़ कहते हैं। तुमने यह संख्या कहां सुनी है? इस संख्या को लिखने की कोशिश करो। शून्यों की संख्या में मत उलझो

वगैरह। हम यह सब उन्हें बताते हैं। फिर एक पूरा भाग है, जो औरतों के बारे में है। ऐसी औरतें जो पहली बार मछली पकड़ने जाती हैं। इन्होंने पहले कभी मछलियां नहीं पकड़ी थीं। वे कर्जा लेती हैं, एक नाव खरीदती हैं। सारी औरतें हैं। ये तमिलनाडु की बात है। फिर वे मछलियों को सुखाने की एक फैक्टरी लगाती हैं।

असल में रोजमर्रा के संदर्भ पर बात करना अक्सर असहज लगता है लोगों को। यही वजह है कि अक्सर अभिजात्य स्कूल और अभिजात्य अध्यापक/अध्यापिकाएं कहते हैं कि ये किताबें तो देहाती बच्चों के लिए लिखी गई हैं। उनको समझ में नहीं आता कि ये किताबें सारे बच्चों के लिए कितने काम की हैं। उनको लगता है कि ये किताबें देहाती बच्चों के लिए हैं क्योंकि आप उनके जैसे संदर्भों का इस्तेमाल कर रहे हैं। इस तरह, मेरा ख्याल है कि विषयवस्तु तैयार करने का यह सवाल और पाठ्यपुस्तकें बनाने का सवाल लगातार नए रूप में खुलता जाता है। ये चुनौतियां भी नए रंग में सामने आती रहती हैं - कि हम संदर्भ को कैसे देखते हैं, कैसे सीधी लकीर की बजाय टेढ़े-मेढ़े ढंग से बात की जाए, उन पर ऐसे लोगों के साथ मिलकर कैसे काम किया जाए जो खुद इन संदर्भों में काम कर रहे हैं।

यहां अभी एक और भी गौर करने वाली बात बची हुई है। आप जानते हैं कि मिल-जुल कर पाठ्यपुस्तक बनाना भी बहुत मुश्किलों भरा काम है। और हमारे देश में ऐसी बहुत किताबें नहीं हैं, जो इन मुद्दों पर बात करती हों। हालांकि हम दशकों से पाठ्यपुस्तकें छाप रहे हैं। उद्योग और हर छोटे-बड़े को आईसीटी की तरफ छलांग लगाना बड़ा आसान लगने लगा है हालांकि ये रास्ता ज्यादा खर्चीला हो सकता है, इसमें ज्यादा समय लगता है, इसमें कई गुना ज्यादा लोगों की जरूरत पड़ती है, जो रचनात्मक ढंग से और मिलकर काम करें, प्रिंट माध्यम से भी ज्यादा लोगों की जरूरत पड़ती है आईसीटी में। और मेरा ख्याल है कि हमें इस बारे में सावधान रहना चाहिए क्योंकि आज हम देख रहे हैं कि 12वीं योजना में आईसीटी के बारे में बड़ी लुभावनी बातें कही गई हैं। नौकरशाहों के लिए ये सब कहना बहुत आसान है। ऊपर से हमारे सामने एक बहुत विशाल कंप्यूटर उद्योग भी अपनी जेबें भरने को तैयार खड़ा है।

आईसीटी के लिए मंत्रालयों और राज्य सरकारों पर बहुत भारी दबाव है। एक ही रट लगी हुई है, कंप्यूटर खरीदो, वीसीडी खरीदो, ये खरीद लो, वो खरीद लो। मगर कौन लोग हैं जो इनको बना रहे हैं? हम अपने विद्यार्थियों से पूछते हैं कि क्या तुमने कोई ऐसी शैक्षिक सामग्री देखी है? तुमने इसे इन नजरियों से देखा है जिन पर हमने बात की है? तुम्हें लगता है कि ये वाकई काम के साधन हैं? फिर भी बाजार पलक झपकते इन्हीं दबावों के कब्जे में आ जाएगा क्योंकि बहुत सारे लोग हैं जो आईसीटी के लिए जोर लगा रहे हैं और राज्य सरकारें भी चुपचाप मान लेती हैं कि हां साहब गुणवत्ता की समस्या बनी हुई है, और हमने तो अध्यापकों को भी प्रशिक्षण देकर देख लिया तो चलो अब सीडी से पढ़ाकर ही देख लें।

मेरा ख्याल है कि हमारे जैसे मंच में मौजूद लोगों को ये सवाल पूछने चाहिए। कौन लोग हैं जो ये दबाव बना रहे हैं? क्या हमें कोई प्रोग्रामिंग, कोई प्रायोगिक परियोजना किफायती लागत पर मिल सकती है? और मैं लागत पर इसलिए जोर दे रही हूं कि इन सारी चीजों में बहुत सारा पैसा लगता है। मेरे ख्याल में, मिसाल के तौर पर एनीमेशन को ही लीजिए, कल बच्चों के लिए जो एनीमेशन फिल्म दिखाई गई थी, वो कहां बच्चों को छूती है? ये फिल्में किस तरह मदद कर सकती हैं? इनके लिए किस तरह के संसाधनों की जरूरत है? हमें किस तरह की एनीमेशन फिल्में बनाने की जरूरत है? मेरा ख्याल है कि हमें इन मुद्दों पर सोचने वाले बहुत सारे लोगों की जरूरत है क्योंकि हम इनसे बच नहीं पाएंगे और इनसे रूबरू होना ही पड़ेगा। ◆

भाषान्तर : योगेन्द्र दत्त